बचपन की याद रही बातों में

तेजी ग्रोवर

यह मेरे छुटपन की बात है। एक दिन मैं बैठे-बैठे चींटियों को देख रही थी अनाज के दाने ढोते हुए। फिर एक चींटी अपना दाना छोड़ रास्ते में पड़ी एक मरी हुई चींटी को उठाकर चलने लगी। आज जब मैं लिखने बैठी तो यह हाइकु मुझे नज़र आ गया

मैं देखता हूँ उन्हें खींच ले जाते हुए
बाँबी तक अपने मित्र को
चींटियाँ भी शोक मनाती हैं।

ये ऐसा करती हैं, यानी मरी चींटियों को ढो ले जाती हैं, लेकिन क्यों करती हैं मुझे नहीं मालूम। दूसरे प्राणियों की किसी बात पर अचरज करने से पहले मैं खुद से पूछती हूँ मैं इस स्थिति में होती तो क्या करती?

बचपन की बात तो दूसरी थी लेकिन आज के दिन मेरा चींटियों से क्या सम्बन्ध है? होशंगाबाद के दिव्य-ज्योति घाट पर बसे घरों की ताज़ा खबर यह है – सभी लोग एक दूसरे से सलाह मशविरा कर रहे हैं – इस बार लाल चींटियों ने रात में बिछे हुए बिस्तरों पर भी हमला कर दिया है। सभी लोग रात में खुजली के मारे उठकर बैठ जाते हैं। अभी तक तो हम सभी लोग अपने खाने-पीने का पूरा सामान पानी में रखते आए थे पीने का पानी भी पानी में रखते हैं। क्योंकि वे पानी में भी डूबकर मर जाती हैं लेकिन क्या वे बिस्तर पर इसलिए आईं होगी इस साल क्योंकि कूलर की ठण्डक उन्हें भी अच्छी लग गई होगी? घास की बनी टुकनिया जिसमें हमारी मीठी गोलियों वाली दवाइयाँ रखी रहती हैं, वह भी उन्हीं की नगरी में बदल गई। अपने पलंग के पाए तो हमने पानी के कटोरों में रख दिए, जैसे हमने उस मेज़ के रखे थे जिस पर सारा खाने का सामान हमने रख छोड़ा है। अब रोज़ हम पौधों की तरह बहुत-सी कटोरियों को सींचते हैं।

मैं कुछ हिन्दी के लेखकों की बात करूँगी जिन्होंने चींटियों के बारे में कुछ-कुछ सोचा है। विनोद कुमार शुक्ल की माँ चूल्हे में लकड़ी डालते समय फूँक मारकर चींटियों को हटा दिया करती थीं। जब मैं देखती हूँ कि वे शहद में डूबकर मर रही हैं और कूलर के पानी में घुस गई हैं तो मुझे बहुत दुख होता है। मैं समझ नहीं पाती – क्यों कुछ चींटियाँ कूलर की हवा का मज़ा लेने बिस्तर पर चढ़ी आती हैं और क्यों दूसरी चींटियाँ सीधे कूलर के पानी ही में उतर जाती हैं। हिन्दी कवि केदारनाथ सिंह दिल्ली में बैठे हुए इस बात की चिन्ता करते हैं कि अब इस शहर में चींटियों को अपने अण्डे रखने की जगह नहीं मिलती। कवि के नाते वे इस दुख का अनुवाद हिन्दी में करना चाहते हैं। इस विषय में उनकी कविता पढ़कर मुझे लगा कि मेरे संयुक्त परिवार में जिसमें मैं दूसरे प्राणियों के लिए जगह बनाने की कोशिश करती हूँ, चींटियाँ बड़े-बूढ़ों की जगह घूमती-फिरती हैं। मेरे पास उनके लायक भाषा नहीं है जिसमें मैं उन्हें समझा सकूँ कि वे पानी और शहद में डूब जाएँगी और कम्प्यूटर के अन्दर उनका रहना ठीक नहीं है।

इंडोनेशिया की एक जनजाति में सुबह उठकर केले के पत्तों में खूब सारा भोजन अपने घर के बाहर जगह-जगह रखने की प्रथा है। वे लोग मानते हैं कि उनके पुरखे आकर यह खाना खाते हैं। शीघ्र ही चींटियों की कतारें भोजन लेने आ पहुँचती हैं। कभी किसी विदेशी लेखक को यह देखकर हँसी आ गई कि लो देखो वे सोचते थे पुरखे आकर खाएँगे! फिर तुरन्त ही उसने अपनी सोच को बदल लिया। क्या ज़रूरी है पुरखे मनुष्य ही होने चाहिए? जैन भिक्षु बरसात के मौसम में अपनी पदयात्राएँ कम कर देते हैं क्योंकि कीड़े बहुत निकलते हैं और वे उन्हें कुचलना नहीं चाहते।

पिछले अंक में तुमने कवि तेजी ग्रोवर का लेख "खिड़की से हटाकर रखी हुई आरामकुर्सी" पढ़ा होगा। इस लेख में उनका नाम छूट जाने का हमें खेद है।

इन दोनों प्रसंगों में मनुष्य और चींटियों दोनों की ही भलाई है। घर के बाहर रखे हुए खाने से खुश चींटियाँ रसोई में रखे खाने पर नहीं आतीं और भिक्षु लोगों का ज़हरीले कीड़ों से भी बचाव हो जाता है।

होपी मिथकों में सात बार सृष्टि के नष्ट हो जाने की बात आई है। सातों बार चींटियाँ मनुष्य को लेकर अपनी बाँबियों में चली जाती हैं। सात बार मनुष्य प्रलय में भी मरने से बच जाता है। क्या आठवीं बार भी ऐसा होगा?

या चींटियाँ समझ जाएँगी कि मनुष्य को बचाने का कोई फायदा नहीं है? मनुष्य जिसे लगता है कि ईंट-पत्थर के बने हुए ये घर उसी के हैं, जबकि वह हज़ारों सालों से कई जंगली जीवों से जगह छीन-छीनकर स्वयं को सुरक्षित करने की कोशिश करता आया है। पश्चिमी देशों में तो लोग छिपकलियों या चींटियों को अपने घरों के भीतर देख खौफ से शायद मर ही जाएँगे। मेरे कई यूरोपीय दोस्त मेरे घर में आकर चैन से सो नहीं सकते क्योंकि उन्हें लगता है यहाँ मनुष्य के अलावा और भी कई प्राणी छुट्टे घूम रहे होते हैं।

इंडोनेशियाई आदिवासी तो चींटियों, यानी अपने पुरखों के लिए अनाज रखकर पुरखों को खुश कर अपना खाना बचा भी लेते थे। लेकिन हम लोग ऐसा नहीं कर पाए। वे धूप में सूखते कपड़ों में ठण्डक के लिए आती हैं लेकिन जब मैंने खास उनके लिए गीले कपड़े लटकाए, तो वे कभी नहीं आईं। उनके लिए पर्याप्त मात्रा में खाना, गुड़, मिश्री आदि बाहर रखे, तो वे उन पर आकर भी, रसोई के खाने को नहीं छोड़तीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि वे मेरे स्वार्थ को भाँप जाती हैं? जब मैं पानी को कपड़े से छान उन्हें डूबने से बचाने की कोशिश करती हूँ, तब वे क्या सोचती हैं? तब मैं क्या सोच रही होती हूँ?

मिश्री आदि बाहर रखें, तो वे उन पर आकर भी, रसोई के खाने को नहीं छोड़तीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि वे मेरे स्वार्थ को भाँप जाती हैं? जब मैं पानी को कपड़े से छान उन्हें डूबने से बचाने की कोशिश करती हूँ, तब वे क्या सोचती हैं? तब मैं क्या सोच रही होती हूँ?

अगर वे मेरे सवालों का जवाब दे सकती हैं तो मेरा तीस साल पुराना प्रश्न है – मेरे हॉस्टल के कमरे में वे मेरे खाने-पीने के सामान को छोड़ हमेशा साबुन पर ही क्यों आती थीं? कोई मुझें यह भी ज़रूर बताए कि वे पानी में क्यों आने लगी हैं – क्या इसका जलवायु के बदलाव से कुछ सम्बन्ध है?

अभी यह लिखते-लिखते मेरे साथी रुस्तम उस स्टूल को बाहर धूप में ले जा रहे हैं जिस पर शब्दकोश रखे हुए हैं।

कुछ देर पहले एक चाय का कप इस स्टूल पर पड़ा था, और अब यह उनका घर है। उनकी शान में लिखे गए जे. ऐलन फेडर के इस हाइकु से मैं बात खत्म करती हूँ:

खाना फर्श पर घूम रहा है
कुत्ते की रोटी का टुकड़ा
काला पड़ता हुआ। चकमक

चित्रः के. परसुराम